

जीवन अमृत है

मनुष्यका जीवन उत्साह, आशा और दृढ़ता इन तीनोंसे आगे बढ़ता है। मनुष्य देखनेमें लोगोंको बड़ी उम्रका लगता है। पर भीतरसे तो वह आत्माके रूपमें अजर-अमर है, शाश्वत है परन्तु जीवके रूपमें वह कभी बड़ी उम्रका नहीं होता। हमेशा उसका मन नया-नया होता है और उसकी जवानी बनी रहती है। मनुष्यके जीवनमें उसके मनकी जवानी ही उसको कर्मकी प्रेरणा देती है।

जब किसीकी वर्षगाँठ मनाते हैं तो बच्चे लोग यह सोचते हैं कि जैसे हमलोग अपनी वर्षगाँठ मनाकर खुश होते हैं वैसे ये भी वर्षगाँठ मनाकर खुश हों। पर मनुष्यके जीवनमें ईश्वरका दिया हुआ जितना है उसपर यदि वह ध्यान दे तो उसका मन हमेशा हर्षसे

उत्फुल्ल, खुश रह सकता है। होता यह है कि मनुष्य यह तो गिनने लगता है कि हमारे पास किस-किस चीजकी कमी है परन्तु वह यह नहीं गिनता कि हमको भगवान्ने क्या-क्या दिया है।

महात्मा तुलसीदासजीने गाया है 'दियो सुकुल जनम, शरीर सुन्दर, देत जो फल चारिको।' अच्छे वंशमें जन्म हुआ, शरीर सुन्दर मिला, इसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ प्राप्त किये जा सकते हैं और इसमें ईश्वरकी आराधना हो सकती है। इसमें निरन्तर सबको प्रेम दिया जा सकता है।

प्रेम देख-देखकर नहीं दिया जाता, जो भी अपने सामने आया उसको प्रेम दिया जाता है। जैसे सूर्यका स्वभाव रोशनी देनेका है, जैसे चन्द्रमाका स्वभाव चाँदनी देनेका है, जैसे जलका स्वभाव तृप्ति देनेका है इसी प्रकार मनुष्यके आत्माका स्वभाव सबको प्रेम देने का है। जिससे मनुष्यके जीवनकी सुख-सुविधा बढ़े ऐसी स्थितिसे गुजरनेका है। यह

तो बाहरकी जो चीजें आ जाती हैं वे मनुष्यको इससे विमुख कर देती हैं। सहज स्वभावसे इसमें अमृत ही झरता रहता है जैसे गंगाजीमें लहर गंगाजल ही है, इसी प्रकार मनुष्यके जीवनमें जो नित्य शुद्ध बुद्ध सच्चिदानन्द घन आत्मा भीतर बैठा हुआ है यह वाणी उसकी लहर है। आँख, हाथ, कान, उसकी लहर हैं। यह सम्पूर्ण जीवन सच्चिदानन्दका ही विलास और विकास है।

इसलिए मनुष्यको इस बातपर ध्यान रखकर अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए कि हमें सबसे ऐसा ही व्यवहार करना है जिससे सबके जीवनमें सुविधा प्राप्त हो, बढ़े। सबकी समझदारी बढ़े, ज्ञान बढ़े, सबका आनन्द बढ़े, सबका हित हो, इसीके लिए यह मनुष्य जीवन है। अपने स्वभावमें जो बाहरसे आगन्तुक चीजें आ गयी हैं उनसे सावधान रहकर निरन्तर अपने स्वभावकी वर्षा करता रहे। जैसे कुएँमें—से जितना जल निकलता है उतना ही नीचेसे

और जल आ जाता है, इसी प्रकार मनुष्य जितनी उदारताका-प्रसन्नताका वरण करता है उतना ही उसके जीवनमें और-और वृद्धि होती जाती है।

हम जो वर्षगांठ मनाते हैं, वह अगले क्षणको और भी उत्साह पूर्ण बनानेके लिए है। यदि इसमें पीछे देखनेकी कोई वस्तु है तो उसे याद करें, उसका निरीक्षण करें तो वह उतना ही है जितना एक सिंह अपने रास्तेमें चलते-चलते घूमकर पीछेकी ओर थोड़ी देर देख लेता है कि हमारे पीछे कौन है ? कितना रास्ता पार करके आ गये ! हम कहाँ खड़े हैं ? केवल सिंहावलोकन मात्र ही पीछेकी ओर देखनेका है। अपना रास्ता आगे तय करनेका है और आगे चलनेमें भी एक बात बहुत ध्यान रखनेकी है। हम एक बार किसी पहाड़की यात्रा कर रहे थे। मोटर चल रही थी। उसमें दाहिनी तरफ बहुत नीचा खड्ड था। उसके किनारेसे मोटर चल रही थी। जब हम नीचे खड्डकी ओर देखने लगे तो हमारे जानकार

साथीने कहा कि तुम मोटरके सामने सड़ककी तरफ देखो। यह थोड़ी-थोड़ी करके ऊँचाई तय करती जा रही है और यदि खड्डकी ओर देखोगे तो कै आने लगेगी। इसलिए खड्डकी ओर देखकर पहाड़की यात्रा नहीं की जाती। अपने सामनेकी जो भूमि है उसको देखकर यात्रा की जाती है। उसकी अत्यधिक दूरी तय करनी है- ऊँचाई पार करनी है यह नहीं देखना चाहिए बल्कि अपने आस-पासकी जो भूमि है उसीको देखते हुए आगे बढ़ना चाहिए।

तो जीवनमें वर्षगांठ जो आती है वह आगेके लिए हमें एक योजना देती है और पीछेसे हमारे साथ क्या-क्या आया है, कितना है इसका निरीक्षण करनेका अवसर देती है। वैसे ही जैसे घड़ीमें क्षण-क्षण सूर्य आगे बढ़ती चलती है वैसे दुनियाँ भी क्षण-क्षण आगे बढ़ती चलती है और हम एक नई जगहमें अपनेको पाते हैं।

तो नयी-नयी जगह, नया-नया समय और नयी-नयी वस्तुएँ हमको मिलती हैं और इस परिवर्तनमें अपने आपको कहीं उलझाना नहीं चाहिए। बस जो परिवर्तन आता है उसका स्वागत-सत्कार करना चाहिए और उसके रूपमें परमात्माका अनुभव करना चाहिए।

इस प्रकार हमारा जीवन आगे उत्तम-उत्तम कार्य करे और अपना प्रेम अपना वात्सल्य अपना स्नेह सबके ऊपर बरसता हुआ ही चले, आँखमें-से प्रेम बरसे, होठोंमें-से प्रेम बरसे, हाथोंमें से प्रेम बरसे, पाँवोंके चलनेमें भी प्रेम बरसे। यह समग्र आनन्द जीवनमें, जो प्रेमका उत्स है, जो प्रेमका उद्गम है, जो प्रेमकी धारा है उसको प्रकट करके, सारी दुनियाँमें बरसनेमें ही यह जीवनका अर्थ होता है अमृत, इससे सबके ऊपर अमृतकी वर्षा हो, यही जीवन बितानेकी सर्वोत्तम प्रणाली है।

कुछ विचित्र स्वप्न

स्वप्न बहुत-से आये। विस्मरणकी गाढ़ी निद्रामें सो गये। कोई-कोई ऐसे भी आये जिनकी छाप गहरी है। वे कभी-कभी मनमें उभर आते हैं, एक रेखा-चित्र-सा बन जाता है। वैसे विचारकी दृष्टिसे देखा जाय तो जाग्रत् अवस्थामें भी मन अधिकांश स्वप्न ही देखता है। वस्तु एक ओर धरी रह जाती है। उसकी प्रियता-अप्रियता, इतिहास, तत्सम्बन्धी कल्पनाएँ मन पर अधिकार जमा लेती हैं। हम अपनी वासनाके लोकमें विचरने लग जाते हैं और विचरते रहते हैं। गवेषणा करनेपर जाग्रत्का एक विशाल भाग स्वप्नवत् ही होता है। यदि उसमें रम न जायँ, आसक्त न हो जायँ, उनके रख-रखावका हठ न कर लें तो अपना मानसिक जीवन इतना भाररहित हो जाय,

जितना की जीवन्मुक्तका जीवन। स्वप्न टूट जाय, फूट जाय। टूटना— यह उसका सहज स्वभाव है और यही हो रहा है। रोना—हँसना भी स्वप्नका ही है।

हम उन स्वप्नोंकी चर्चा कर रहे हैं जो कभी—कभी हृदय पटलपर स्मृतियोंके रूपमें उभरते हैं। स्वप्नकी स्मृति भी स्वप्न ही है। स्वप्नमें स्थित होकर ही हम स्वप्नका स्मरण करते हैं।

1

जब मैं बालक था, अपने पितामहकी गोदमें सोता था। प्रायः आँख बन्द होते ही मैं स्वप्न सृष्टिमें मग्न हो जाता था। एक श्वेत वर्णका विशाल हाथी मुझे खदेड़ने लगता। मैं डरकर भागता। वह पीछा करता। वन, पर्वत, नदी—नाले, गड्ढे, समतल सब जगह भागता। वह मुझे पकड़ नहीं पाता, परन्तु जब मैं उससे बचनेके लिए उछलता या चिल्लाता तो अपने पितामहकी गोदमें पड़ा हुआ मेरा शरीर भी उछल पड़ता या चिल्ला पड़ता। वे झट मेरे शरीरपर

(8)

हाथ फिराकर जगा देते और कहते— 'क्या स्वप्न देख रहे हो ? क्या डर गये हो ? डरो मत, तुम मेरी गोदमें हो।' मैं जग जाता, डर छूट जाता परन्तु फिर थोड़ी देर बाद ही स्वप्न आ जाता। सम्भवतः पुनः—पुनः आनेके कारण ही उसकी स्मृति अभी तक बनी हो।

स्वप्नशास्त्रकी दृष्टिसे यह स्वप्न चाहे जितना उत्तम या शुभ फलप्रद रहा हो परन्तु एक बात ऐसी है जिससे मुझे बहुत लाभ हुआ। कुछ ही वर्षोंके बाद मुझे यह अनुभव होने लगा कि वस्तुतः मेरा शरीर, मैं जो कुछ हूँ सो सब ईश्वरकी गोदमें ही जाने—अनजाने सो रहा है। जो वन, पर्वत, गड्ढे, बीहड़, सुन्दर—सुन्दर मार्गमें पड़ता है वह सब स्वप्नका दृश्य है। विचारके जाग्रत् होनेपर ईश्वरकी गोद है। अविचार दशामें भय। भय स्वप्न है, ईश्वरकी गोद जाग्रत्।

2

ज्योतिषियोंका कहना था कि मेरा जीवनकाल केवल उन्नीस वर्ष है। छोटी उम्रमें विवाह हुआ। पितरोंको

(9)

श्राद्ध-तर्पणका आश्वासन मिल गया परन्तु मैं रहना चाहता था ब्रह्मचर्य से। वीर्यपातसे मुझे इतनी ग्लानि होती जैसे नरक मिल गया हो। एकदिन गंगाजीके तटपर एकान्त कुटियामें सो रहा था। स्वप्नदोष हो गया। मनमें इतनी ग्लानि और बेचैनी हुई कि उसको याद न करना ही अच्छा है। एकाएक भीतरसे बन्द छोटी-सी कुटियामें अन्धकारकी जगह प्रकाश फैल गया। मालूम पड़ा कि ऊपरकी ओरसे हनुमान्जी आकर खड़े हो गये। कत्थई रंगका शरीर, बड़े-बड़े बाल, सिरपर मुकुट, हाथ जुड़े हुए, कमरमें फेंटा; मैंने चरणपर सिर रखनेका प्रयास किया। लेटा हुआ तो था ही, शरीर उलट गया। वे मुस्कराये। दो मिनटमें कुछ नहीं। फिर वही अन्धकार।

मैं निश्चयपूर्वक तो नहीं कह सकता कि यह स्वप्न था कि जाग्रत् ? कुटी, समय, चौकी, शरीर—सबका सब वही था। जो कुछ भी हो, इससे मुझे एक बड़ा लाभ हुआ— वह यह कि जो मेरे मनमें ग्रन्थि बैठ

गयी थी ग्लानि कारक दशाओंकी हेयताके सम्बन्धमें, उसका निवारण हो गया। शरीर चाहे कितनी गंदगीमें भी रह रहा हो, देवताका अनुग्रह वहाँ भी साथ नहीं छोड़ता। ईश्वरके अनुग्रह पर आस्था दृढ़ होने से इस स्वप्नसे मुझे बहुत बड़ी सहायता मिली।

3

उन दिनों मैं घर पर ही रहता था। मेरे मित्र श्री सुदर्शन सिंह जी चक्र भी साथ ही रहते थे। उनका भी वही घर था। एक बार मुझे बुखार आया। तीन-चार दिन तक लगातार तीन-चार डिग्री बना रहा। बीचमें वमन हुआ। वमन करते-करते मैं बेहोश होकर गिर पड़ा। चक्रजीने उठाकर पानीके टबमें मेरा शरीर रख दिया। उन दिनों चक्रजी जड़ी-बूटियोंका अनुसन्धान, सूर्यकिरणोंसे रंगीन बोतलोंके पानीको प्रभावित करना एवं प्राकृत चिकित्साके प्रयोग कर रहे थे। उस टबमें ही बेहोशीकी दशामें मैंने देखा कि एक भयंकर स्त्री जिसके सफेद-सफेद बाल बिखरे हुए, बड़े-बड़े

(11)

दाँत, विकराल मुख, रक्तलिप्त वस्त्र हाथमें खड्ग लेकर मारनेके लिए झपट रही है। मैं डर गया। इतनेमें ही क्या आश्चर्य हुआ कि हाथमें गदा लिए हनुमान् जी उसकी ओर दौड़ पड़े। लालरंग, लालवस्त्र, विशाल शरीर। उन्होंने मौत को डराकर ऐसा खदेड़ा कि वह लुप्त ही हो गयी।

इसमें सन्देह नहीं कि वह मूर्च्छा दशा थी और मृत्यु एवं हनुमान्जी स्वप्नके ही रूप थे परन्तु सबसे बड़ा आश्चर्य यह हुआ कि होशमें आनेपर शरीरका तापमान सामान्य था। ज्वर सर्वथा उतर गया था। मैं तीन-चार दिन पहले जैसा स्वस्थ-प्रसन्न था, वैसा ही हो गया था।

किसी-किसी स्वप्नका प्रभाव जाग्रत् पर भी पड़ता है परन्तु इस घटनामें देवताका प्रभाव सर्वथा स्पष्ट था। इस प्रसंगमें एक बात और स्मरण है— जब मैं दस-बारह वर्षका था; लघुकौमुदी पढ़नेके लिए धानापुर के पण्डित प्रह्लाद मिश्रके पास जाया करता था। एक बार बुखार आ जानेके कारण तीन-चार दिन नहीं गया। उनके

पिताजी पण्डित रघुमिश्र मेरे पितामहके पास आये और कह गये कि 'कल इन्हें भेज देना।' मैं गया। उन्होंने पहलेसे ही घर लीप-पोतकर कम्बल बिछा रखा था। उस पर मुझे सुला दिया और चारों ओर गायके गोबरकी राखसे एक मन्त्र लिख दिया। मैं दिन भर वहीं रहा, ज्वर नहीं आया। बालचापल्यसे वह मन्त्र मैंने पढ़कर याद कर लिया। मुझे बहुत बादमें मालूम पड़ा कि वह मन्त्र लाङ्गूलोपनिषद्में उल्लिखित हनुमान्जीका ज्वरापहारी मन्त्र था। उसके बाद अनेक वर्षों तक ज्वर नहीं आया। जब आया तब पूर्वोक्त स्वप्न हुआ था जिसमें हनुमान्जीने रक्षा की। देवताका अनुग्रह सर्वदा अपने साथ है।

4

मैं कल्याण-सम्पादक भाईजी श्री हनुमान प्रसादजीके साथ कलकत्ता था। वहाँ उन दिनों हिन्दु-मुस्लिम दंगे हो रहे थे। रातके समय एक ही मोटरमें जयदयाल कसेरा एवं ज्वाला प्रसाद

(13)

कनोडियाके साथ हमलोग निकले। चलती मोटरमें मैं सो गया। मैंने स्वप्नमें देखा कि ज्वालाप्रसाद कनोडियाने मुझे इतना भोजन करा दिया, विभिन्न पदार्थ, स्वादु और आग्रहपूर्वक कि मेरा पेट ही फट गया और मैं मर गया। मेरी अर्थी गंगा किनारे ले जायी गयी। सेठ जयदयाल गोयन्दका आदि वहाँके धर्मप्राण सत्पुरुष साथ गये थे— भाईजी, कसेराजी, कनोडिया जी। मेरा शरीर चितापर धू—धू करके जल रहा था। ये लोग मेरे बारेमें परस्पर चर्चा कर रहे थे। स्वप्नमें ही मेरे मनमें प्रश्न उठा— शरीर छूट चुका, जल रहा है परन्तु मैं जलते हुए शरीरको, बात करते हुए लोगोंको देख रहा हूँ। देख रहा हूँ पूरे श्मशानको और धधकती हुई चिताको, तब मैं मरा कहाँ ? मैं तो जिन्दा हूँ। मैं कहाँ हूँ ? भाईजीने मुझे स्पर्श करके जगा दिया। स्वप्न टूट गया। बहुत दिनों तक जब उस स्वप्नकी स्मृति हृदय पटलपर आती तो छा जाता गंगाका विशाल तट, श्मशानकी लम्बी—चौड़ी भूमि, धधकती चिता,

चर्चा करते लोग और देखता हुआ मैं। अवश्य ही इस स्वप्नने ध्यानकी भूमिका अदा की और मैं कौन ? यह ज्वलन्त प्रश्न। इसका उत्तर साक्षात् अपरोक्ष।

5

सन् '४२ के प्रारम्भमें ज्योतिषपीठाधीश्वर शंकराचार्य श्री ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराजसे मैंने दण्डग्रहण किया था। विरजाहोमके लिए अग्निस्थापनके अनन्तर रात्रि-जागरण करना पड़ा। अग्निरक्षा करते समय बैठे-बैठे मुझे निद्रा आ गयी। मैंने स्वप्न देखा कि मैं कषायवस्त्र धारण किये दाहिने हाथमें दण्ड लिये स्थिर भावसे सिंहासनपर बैठा हूँ। मेरे पिता एवं पितामह, जिनकी मृत्यु बरसों पूर्व हो चुकी थी, वैदिक ब्राह्मणोचित वेशभूषामें कुश-जलसे मेरा अभिषेक कर रहे हैं और प्रसन्न हो रहे हैं। स्वप्न टूटनेपर बार-बार मुझे उन दोनोंकी प्रसन्न मुद्राका स्मरण होता और भीतर ही भीतर ऐसा लगता कि उन्होंने हमारे संन्यासका अनुमोदन कर दिया है।

(15)

बात थी स्वप्नावस्था की परन्तु जाग्रत् अवस्थाके मनपर उसका दीर्घकालव्यापी प्रभाव पड़ा।

स्वप्नोंमें भी लौकिक, दैविक एवं आध्यात्मिकका भेद होता है। निश्चय ही मेरा यह स्वप्न दैवी प्रसाद था।

6

संन्यास—ग्रहणके कुछ वर्षोंके भीतर ही मैं वृन्दावनमें निवास करने लगा था। मेरे पास कई साधक भी रहने लगे थे। मैं श्री उड़िया बाबाजी महाराजके साथ भोजन किया करता था परन्तु साधकोंको क्षेत्रोंसे या गाँवसे भी भिक्षा लानी पड़ती थी। कोई संग्रह—परिग्रह नहीं था, सुख—सुविधा नहीं थी। चटाई पर सो जाते, दिनमें पाठ हो जाता, रातको अन्धेरेमें बैठकर भजन होता था। नित्यकर्मके लिए जंगल एवं तलाब थे ही।

मेरे साथ मध्यप्रदेशके एक साधक थे, उनका नाम रामचरण था। वे गोपाल अष्टादशाक्षर मन्त्रका अनुष्ठान करते थे। वे प्रायः दो दिनमें अठारह हजार

(16)

मन्त्र-जप कर लिया करते थे। कपड़ा धोनेके लिए साबुन नहीं था, घी-दूधका तो दर्शन ही दुर्लभ था। वे जप करते-करते कभी-कभी उद्विग्न हो जाते। मेरे पास आकर कहते: 'इतने दिन बीत गये जप करते-करते कोई लाभ नहीं हुआ। न भगवान्से प्रेम हुआ, न साधन से।' मैंने दो-चार बार समझाया : 'धैर्य-धारण करो। जप-साधनका थोड़ा-थोड़ा फल मिलने लगता है, जैसे स्वप्नमें दर्शन, ध्यानमें दर्शन आदि; तो बड़ा फल मिलनेमें विलम्ब हो जाता है। छोटा फल नहीं मिलता तो एकाएक बड़ा फल आ जाता है।' परन्तु वे बार-बार यही कहते रहे कि 'मुझे कुछ लाभ नहीं हो रहा।' मैंने यही बात सुनते-सुनते ऊबकर उनसे कह दिया कि मन्त्रका जप छोड़ दो। वे हिम्मत करके बोले : 'अच्छी बात है, छोड़ता हूँ।' थोड़ी देर बाद रोते हुए आये : 'यह नहीं छूटता है, मैं नहीं छोड़ सकता हूँ।' मैंने डाँटकर कहा : 'अब छोड़ना ही पड़ेगा।' वे अत्यन्त व्याकुल होकर

रोने लगे। मैंने उनसे कहा : 'देखो, जपका यह प्रत्यक्ष फल है कि इस मन्त्रसे तुम्हारा प्रेम हो गया है। यही तो जपका फल है।' वे फिर जप करने लगे।

मेरे मनमें यह विचार होने लगा कि इतना जप करनेपर भी इनके मनकी रूक्षता क्यों नहीं मिटती, कोमलताका उदय क्यों नहीं होता ? इन्हें स्वप्नमें या जाग्रत्में भगवद्रसका अनुभव क्यों नहीं होता ? एक दिन मुझे विचित्र स्वप्न आया— हम लोग रेलगाड़ी पर यात्रा कर रहे हैं। मैं, रामचरणजी और दूसरे कुछ साधक। रामचरणजी चलती गाड़ीमें कहने लगे : 'मुझे प्यास लगी है, जल चाहिए।' मैंने उन्हें दिखाया : वह देखो सामने धरती पर कुआँ है, जाओ जल खींचकर ले आओ।' ट्रेन चलती रही, वे उतर गये। कुएँपर गये। लौटकर ट्रेनमें फिर चढ़ गये। मैंने पूछा : 'पानी मिला ?' उन्होंने कहा : 'नहीं।' कुएँसे आवाज आई कि लोटा तो तुम्हारे पास है परन्तु भावकी रस्सी नहीं है।'

मेरा स्वप्न टूट गया। जाग्रत् अवस्थामें मैंने उन्हें

यह स्वप्न सुनाया। मुझे स्मरण है कि उनकी भावभक्ति बहुत बढ़ गयी थी। स्वप्नमें कभी-कभी उपदेश एवं पथ-प्रदर्शन प्राप्त होता है।

7

श्री उड़ियाबाबाजी महाराजने भिन्न-भिन्न स्थानों पर रहकर सिद्धि के लिए अनुष्ठान किये थे और उन्हें तत्त्वज्ञान होनेसे पूर्व बहुत-सी सिद्धियाँ भी मिल गयी थीं। जो महात्मा केवल त्याग, वैराग्य, निःसंकल्पता अथवा वेदान्तविचारसे जीवन्मुक्त दशाको प्राप्त करते हैं उनकी स्थिति दूसरी होती है और जो सिद्धि प्राप्त करनेके अनन्तर जीवन्मुक्त होते हैं, उनकी स्थिति दूसरी। सिद्धि प्राप्त करनेवाले पुरुषके पास बिना किसी प्रयत्न या इच्छाके लक्ष्मी, सरस्वती एवं स्त्रियाँ आती हैं। श्री उड़ियाबाबाजी महाराज पहले तो स्त्रियोंको देखते भी नहीं थे। बादमें उनके पास बहुत-सी स्त्रियाँ आने-जाने लगीं। संसारी लोग परस्पर उनकी चर्चा भी करते।

एक दिन मनोहरलालने श्री हरिबाबाजीसे पूछा :

(19)

‘यह सब क्या है ?’ बाबा हँसकर बोले: ‘भैया, तुम लोग यह नहीं समझते। श्री उड़ियाबाबाजीमें श्रीकृष्णका अंश बहुत अधिक है। उनको देखकर स्वाभाविक ही आकर्षण होता है।’

मेरे मनमें ऐसा था कि गुरु ही भगवान् हैं। उपासनामें भले ही गुरु और इष्टका भेद रहता हो, वेदान्तमें तो गुरुके अतिरिक्त दूसरे भगवान्की मान्यता ही गौण है। मेरे मनमें एक श्रीउड़ियाबाबाजी ही ऐसे थे और हैं जिनके प्रति कभी दोष-दृष्टि नहीं हुई।

एक दिन मैंने स्वप्नमें देखा: श्री उड़ियाबाबाजी के सिरपर मुकुट है, हाथमें बाँसुरी, कानोंमें कुण्डल, गलेमें वैजयन्तीमाला, कटि काछनी पहनकर रासलीलामें नृत्य कर रहे हैं। मुझे बड़ा आनन्द आया। यह दृश्य देर तक रहा। झूलेमें झूलते हुए भी देखा। उन्होंने हँसकर मेरे सिर पर हाथ भी रखा।

स्वप्न टूट गया परन्तु गुरु और भगवान्की एकताकी वह झाँकी कभी-कभी मन पर छा जाती है।

उसी वर्ष जिसमें महाराजजीका शरीर छूट गया था— चैत्रशुक्ल पूर्णिमाको भण्डारा करनेके बाद हम लोग गिरिराजकी परिक्रमा करनेके लिए गये। रात्रिका निस्तब्ध समय। चाँदनी छिटक रही थी। गोविन्द कुण्डके आगे जानेपर स्वामी श्री शान्तानन्द ज्योतिषपीठके शंकराचार्य जो उस समय श्री रामजी ब्रह्मचारीके नामसे प्रसिद्ध थे, श्री स्वरूपानन्द जी शंकराचार्य जो उस समय दण्डी स्वामी नहीं हुए थे, दादा ब्रह्मचारी जी उस समय मेरे निज सेवक थे— सब मुझसे अलग पड़ गये। मैं मार्ग भूलकर दूसरी ओर चल पड़ा। चाँदनी रातमें मैंने दूरसे देखा— हाथमें लकड़ीका कमण्डलु लटकाये, मस्त चालमें हँसते हुए महाराजजी मेरे सामनेकी ओरसे आ रहे हैं। हँसते—हँसते पास आ गये, हाथमें कमण्डलुका लोप हो गया और उन्होंने दोनों हाथसे मेरा गाढ़ आलिंगन किया। वे मेरे शरीरमें प्रविष्ट हो गये और मैं उनके शरीरमें। कुछ

क्षणोंमें प्रपञ्चका भान नहीं रहा। श्रीराम जी ब्रह्मचारीने कहीं दूरसे मुझे 'महाराज जी', 'महाराज जी', कहकर पुकारा और मैं पुनः परिक्रमाके सही मार्ग पर आ गया। निश्चय ही यह एक जाग्रत् स्वप्न था जो मार्गमें चलते समय चाँदनी रातमें हुआ था ! परन्तु इस स्वप्नसे वृत्तिकी इतनी दृढ़ता प्राप्त हुई जो जाग्रत्के दृश्यों से प्राप्त न होती। कभी-कभी स्वप्नदशा भी मधुमयी, रसमयी और लास्यमयी हो जाती है।

9

वेदान्ताचार्य श्रीअसंगानन्दजी महाराज महामण्डलेश्वर मुझसे बहुत प्रेम करते थे। घण्टों मेरे पास बैठते, हाथसे हाथ पकड़ लेते, व्याकरण-वेदान्तकी चर्चा करते। उनका हृदय स्पर्शी शील-स्वभाव कभी-कभी स्मरण पथका पथिक होकर बड़ा आनन्द देता है। उनका शरीर छूट जानेके बाद एक दिन मैंने स्वप्न देखा : 'मैं एक रथमें बैठा हूँ। उसके सारथि कोई महात्मा ही हैं। वह रथ ऊँचे-ऊँचे

पर्वतोंकी मध्य भूमिमें उतर रहा है। झरने हैं, नदियाँ हैं, हरियाली है, बर्फ है। रथ बहुत नीचे एक हृदके पास जाकर रुक गया। मैंने देखा, वहाँ हरी-हरी घास पर मुसकराते हुए स्वामी असंगानन्द जी विराजमान हैं। सत्संग हुआ। उन्होंने एक मन्त्र सुनाया। वह मन्त्र आजकल उपलब्ध वेदकी किसी शाखामें नहीं मिलता। आप भी उस स्वप्न-लब्ध मन्त्रका आनन्द लीजिये:

नात्मा दृश्येन युज्यते

न च तस्माद् वियुज्यते।

आत्मा हि मधुमत्तमः

ततोऽन्यत् नास्ति किञ्चन॥

आत्मा दृश्यके साथ कभी संयुक्त नहीं होता। आत्मा दृश्यसे कभी वियुक्त भी नहीं होता। आत्मा निरतिशय परमानन्द-स्वरूप है। आत्माके अतिरिक्त दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है।

जाग्रत् अवस्था आनेपर इस स्वप्न मन्त्रकी बार-बार स्मृति हो जाती है और आनन्दका अनुभव होता है।

अमृत वचन

आनन्द क्या है ?

आनन्द अर्थात् परिपूर्ण समृद्धि । 'आ' यानि परिपूर्ण; 'नन्द' माने निरतिशय एवं निरुत्तर समृद्धि । निरतिशय— जिससे बड़ा कोई न हो । निरुत्तर— जिसके पश्चात् कोई न हो । आनन्द अर्थात् जिसमें भय न हो । यहाँ या वहाँ वियोग हो जायेगा, यह भय है । अब या तब नहीं रहेगा, यह भी भय है । यह या वह के साथ जुड़ना—बिछुड़ना है, यह भी भय है । परिश्रम करना पड़ेगा, यह भी भय है । पराधीन होना पड़ेगा, यह भी भय है । अज्ञान हो जायेगा, यह भी भय है । आनन्द निर्भय है अर्थात् आनन्दमें देश, काल, वस्तु, श्रम, अन्य पदार्थ या व्यक्ति तथा अज्ञानके लिये कोई स्थान नहीं है । अभिप्राय यह कि आनन्द नित्य प्राप्त है और वह आप ही हैं ।

2.

नाम, यश, ख्याति और कीर्ति के द्वारा अपनेको देश-विदेशमें व्यापक बनानेकी इच्छा या अपने बड़प्पनको सम्पुष्ट करने की इच्छा आत्म निरीक्षण से विमुख कर देती है और मनुष्यको प्रवाह-पतित लोगोंका गुलाम बना देती है।

3.

मित्रकी सद्भावना में आपके प्रति पक्षपात तथा आपके अतिरिक्त दूसरोंके प्रति अन्याय या क्रूरता भी हो सकती है। किसीकी सद्भावना स्वीकार करनेमें उतावली मत कीजिये। सूक्ष्म दृष्टिसे उसकी जाँच कीजिये।

4.

किसी के द्वारा की हुई कटु आलोचना को तुरन्त दुर्भावना मत मान बैठिये। वह आपके हृदयमें वर्तमान दुर्भावनाको मिटाने में सहायक भी हो सकती है। कभी-कभी कड़वी दवा रोगोंको तत्काल मिटा देती है।

(25)

5.

व्यवहारका सार है दूसरों की सुविधाका ध्यान रख कर अपने कर्तव्यको पूरा करना। जिस समय हम दूसरोंकी सुख-सुविधाका ध्यान छोड़ बैठते हैं, उस समय हम देहात्मबुद्धिके चंगुलमें फँस गये होते हैं।

6.

अपनी पूर्णता के अज्ञानसे ही दूसरी वस्तु महत्वपूर्ण दीखती है। फिर उसकी प्राप्ति की इच्छा और प्रयत्न आ जाते हैं। सफलतामें अभिमान और विफलता में ग्लानि होती है। आप अपनी ही निर्गुण सुन्दरता का अनुसन्धान कीजिये। प्रपंच में नहीं फँसेंगे।

7.

क्षमा प्रियतमके मार्गमें बढ़नेका साधन है। यह भगवान् देता है। संसारमें रजोगुणी, तमोगुणी अज्ञानी लोग ही अधिक हैं, वे यदि अज्ञानवश कोई अपराध करते हैं तो उनकी समसत्ता में अपने को ले जाना—

जैसे वे हैं, जिस स्थितिमें रहने के कारण तुम उन्हें गिरा समझते हो, उसी स्थितिमें अपने को ले जाना— कहीं की बुद्धिमानी है? अतः ईश्वरसे क्षमा की शक्ति लो।

8.

आप दूसरों से श्रेष्ठ हैं, ऐसी मान्यताके लिये जिन कारणोंकी आपने कल्पना की है— उनपर विचार कीजिये। कहीं आपका श्रेष्ठता—अभिमान निराधार एवं खोखला न हो। जिन वस्तुओं, क्रियाओं, भावनाओं एवं स्थितियों से अपने को गौरवान्वित मानते हैं, वे कहीं आपको पराधीन तो नहीं बना रही हैं। आप कहीं भी हाथ डालिये, किसी के साथ भी अपने को मिलाइये तो वहाँ से अलग हो जानेकी समर्थता या युक्ति आपमें है या नहीं— इस पर भी विचार कर लीजिये।

9.

अपनी बुद्धिमें किसीको नीच—ऊँच मत करो। अपनी बुद्धिमें समता बनी रहनेका अर्थ है— लक्ष्मी बनी रहना—श्री बनी रहना— शांति बनी रहना। हमेशा

(27)

आपके दिलकी शोभा, सुन्दरता बनी रहे। दिलकी सुन्दरता क्या है ? 'सम' । संगीतकी सुन्दरता भी सम ही है। नारायण, समके बिना आपका दिल बेसुरा है। अतः 'सर्वत्र समबुद्धयः'।

10.

आप स्वयं तो कड़वा बोलें, दूसरोंका अपमान करें, उनको डाँटें— धमकावें, तो यह बात उल्टी हो जायेगी। नारायण, आप स्वयं सन्त बनकर दिखा दें, आपको देख-देखकर लोग नकल करेंगे, अनुकरण करेंगे और आपके घरमें ही सत्संग हो जायेगा।

11.

दुनिया तो ऐसी ही बनी रहेगी— इसमें यदि कुछ बदलने जैसी चीज है तो अपनी आँख, अपना कान। वह भी किसी डॉक्टरके पास जाकर नहीं— इस आँख कान के पीछे जो मन काम कर रहा है, उसको बदलना है।

(28)

12.

धन बढ़ा है कि दाता ?

भगवान् तो हैं धन और सन्त-महात्मा उनके दाता हैं । जिनको भगवत्-प्राप्ति की योग्यता नहीं है, जो उनके पास जा नहीं सकते, उनको बुला नहीं सकते-उनको भी घर बैठे भगवान् को बुलाकर देनेवाले संत हैं। वे तो भगवान्‌के धनी हैं, भगवान् का दान करते हैं।

13.

तपस्या माने इन्द्रियोंका संयम।

कान से भगवान् को सुनें। आँख से भगवान्‌का दर्शन करें। त्वचासे भगवान्‌का स्पर्श करें। नाक से भगवान् के प्रसादको सूँघें, जीभसे चखें और मनसे भगवान्‌के सिवाय किसी अन्यका ध्यान न करें। मन और इन्द्रियोंको संसारमें जानेसे रोकना ही तप है।

14.

शरणागति आत्मबोध है। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, दिशा-काल, चन्द्र-सूर्य आदि जिसके द्वारा नियन्त्रित हैं, वही हमारे इस जीवनका भी नियन्ता है। सब कुछ जिसके अधीन है, मैं भी उसके अधीन हूँ। यह केवल विश्वास नहीं है, सत्य है, बोध है, अनुभव है। मैं शरणागत नहीं, स्वतंत्र हूँ- यह असत्य है, भ्रम है, कल्पना मात्र है। आप अपनी शरणागति को पहचानिये, उसका अनुभव कीजिये। आप प्रभुके हाथों के खिलौना हैं। वह यन्त्री है, आप यन्त्र हैं।

15.

हमारा प्यारा कौन है ? जो पहले हमसे मिल ले और फिर हमसे प्रेम करे वह ? नहीं, मिल ले और प्रेम करे- इसमें तो विशेषता ही क्या है? विशेषता तो तब है, जब मिले नहीं और प्रेम करे। ईश्वरसे मिलकर प्रेम नहीं किया जाता है, ईश्वरसे बिना मिले प्रेम किया जाता है। उसी बिना मिले प्रेमका नाम श्रद्धा है।

(30)

16.

जब भक्त हाथ जोड़ कर भगवान् के सामने इस प्रकार बोलता है कि हे प्रभो, हमारे पुण्य से जो सुख होनेवाला है वह तो तुमको मिल जाय और हमारे पाप का जो दुःख मिलनेवाला है वह हम भोगनेके लिये तैयार हैं। हमें दण्ड दो। तब भगवान् कहते हैं— भाई, जिसकी आमदनी हमने ले ली उसका कर्ज चुकाना भी हमारा कर्तव्य हो गया।

17.

मित्रता करो, करुणा भी करो। लेकिन जिससे मित्रता करो, जिसपर करुणा करो, उसको भगवान् का ही समझो, अपना मत समझ बैठो। नहीं तो राजा भरतकी जैसे हरिणमें आसक्ति हो गयी थी, वैसे हो जायेगी।

18.

मौनका अर्थ यह नहीं है कि भगवान्की दी हुई जो जीभ है उसको काटकर फेंक दिया जाय या बाँध

(31)

दिया जाय। मौन का अर्थ होता है कि आप अपने चिन्तनमें संलग्न रहिये। जिनती जरूरत हो, उतना ही बोलिये। सत्य बोलिये, हित बोलिये, मित बोलिये, आवश्यक बोलिये, अवसरोचित बोलिये और आनन्दप्रद बोलिये।

19.

जिसका तुमसे द्वेष है, घृणा है, स्पर्धा है, उसके लिये नित्य रातको सोते समय प्रेम पूर्वक सच्चे हृदय से यह भावना करो— 'मैं तुम्हें अपना प्यार देता हूँ, तुम तो मेरे ही आत्मा हो' तो द्वेष मिट जायेगा।

20.

जीवनका रहस्य यह है कि सुखसे सटो मत और दुःखसे हटो मत। सुख से सटोगे तो वह जब जायेगा तो तुमको भी साथ ले जायेगा। इस तरह दुःखसे हटोगे तो वह तुम्हारा पीछा करेगा और चैन से नहीं रहने देगा।